अध्याय-3

पोषण न्यूनता का व्यवहारिक एवं शारीरिक विकास पर प्रभाव

पोषण न्यूनता का व्यवहारिक एवं शारीरिक विकास पर प्रभाव

राष्ट्र का उत्थान एवं पतन जनता के पोषण पर निर्भर करता है। पौष्टिक तत्त्वों की न्यूनता से मानव शरीर रोगग्रस्त हो जाता है जिससे उसकी कार्यक्षमता घटने लगती है। शारीरिक कार्य करने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो हम भोज्य पदार्थ से प्राप्त कर सकते हैं। आवश्यकतानुसार यदि किसी व्यक्ति को भोज्य प्रदार्थों से कैलोरी नहीं मिल पाती है तो उसका स्वास्थ्य दिनों–दिन गिरता जाता है, जिससे वह कमजोर हो जाता है, बराबर थकावट महसूस करता है तथा उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में शारीरिक कार्य के लिए उसके शरीर में एकत्रित वसा का उपयोग ऊर्जा प्रदान करने के लिए होने लगता है। ऊर्जा शरीर के कार्य के लिए वसायुक्त ऊतकों को व्यय होने लगती है और फिर मांसपेशियों एवं यकृत में संचित ऊर्जा भी धीरे–धीरे व्यय होने लगती है। यदि यही स्थिति लगातार बनी रही तो व्यक्ति का शरीर–भार कम होने लगता है एवं कुछ दिनों बाद शरीर देखने में कंकाल के रूप में दिखाई देने लगता है जिससे वह बुखार, रक्तअल्पता तथा अन्य संक्रामक रोगों से पीड़ित हो जाता है।

किशोरावस्था में तेज शारीरिक वृद्धि के कारण अधिक कैलोरी की आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था में आधारीय चयापचय दर(बी0 एम0 आर0) भी बढ़ जाता है जिससे अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में आहार में ऊर्जा की कमी होने से प्रोटीन ऊर्जा देने का काम करने लगता है, फलस्वरूप शारीरिक वृद्धि में बाधा होने लगती है जिसका परिणाम उसे जीवन भर भुगतना पड़ता है। इससे शारीरिक विकास रूक जाता है, वह सुस्त हो जाता है, शीघ्र थक

जाता है एवं विभिन्न रोगों से ग्रसित रहने लगता है।[1] एक किशोर एवं किशोरी द्वारा सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार ग्रहण करने से उसकी शारीरिक ऊर्जा के साथ–साथ अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती रहती है। पर्याप्त मात्रा में आहार ग्रहण करने से शरीर की आवश्यकतानुसार कैलोरी की पूर्ति होती रहती है। यदि कोई किशोर एवं किशोरी भोजन कम मात्रा में ग्रहण करती है तो उसके शरीर में ऊर्जा के साथ–साथ अन्य भोज्य तत्वों की कमी हो जाती है। किशोरावस्था में कैलोरी की कमी का भयंकर परिणाम होता है। इससे वह पोषण न्यूनता एवं कुपोषण का शिकार हो जाता है और उसका शारीरिक विकास रूक जाता है। पोषण न्यूनता का व्यवहारिक एवं शारीरिक विकास पर प्रभाव को अलग–अलग विभाजित कर पहला–कुपोषण का प्रकोप एवं कारण, दूसरा–पोषण न्यूनता से रोगों में वृद्धि, एवं तीसरा उपचारात्मक पोषण की आवश्यकता के रूप में अध्ययन करना होगा।

(1) कुपोषण का प्रकोप एवं कारण

विकासशील राष्ट्रों की कतार छोड़कर विकसित राष्ट्रों के समूह में शामिल होने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील भारत की जनसंख्या 2001 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार एक अरब के आँकड़े को पार करती हुई इससे थोड़ा ऊपर पहुँच गयी है। इसमें महिलाओं की जनसंख्या का प्रतिशत 48.22 है। झमतानी(1995) के एक अध्ययन के अनुसार भारत की कुल महिला जनसंख्या का 77 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों में रहता है जिनका पारिवारिक से लेकर कृषि एवं कृषि आधारित अन्य कार्यों में श्रम का उपयोग पुरुष श्रम की तुलना में कहीं अधिक होता है। परन्तु सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग आधा भाग परम्परागत कुपोषण, बेरोजगारी, निर्धनता एवं रूग्णता के दुष्प्रभावों को झेलता रहता है।

आहार सर्वेक्षणों के अनुसार हमारे देश की अधिकांश जनता का भोजन पोषक तत्त्वों की दृष्टि से अत्यन्त अपर्याप्त है। अपर्याप्तता गुणात्मक तथा परिणामात्मक, दोनों दृष्टियों से है। गरीब जनता की कैलोरी मांग तक की पूर्ति नहीं हो पाती। अतः

कमजोर आर्थिक स्थिति वाले निम्न तथा मध्यम वर्गों में कुपोषण की समस्या अत्यन्त विकराल रूप लेकर खड़ी है। इसका सबसे अधिक प्रभाव छोटे बच्चों, गर्भवती व दूध पिलाती माताओं पर पड़ता है।[2] एक सर्वेक्षण के अनुसार कुपोषण के कारण 47 प्रतिशत बच्चों की उम्र के अनुरूप लम्बाई और वजन नहीं बढ़ पा रहा है। 6 से 49 साल की 50 प्रतिशत महिलायें रक्ताल्पता की शिकार हैं। अधिकारिक आँकड़ों के अनुसार स्कूल जाने वाला देश का हर दूसरा बच्चा या तो सामान्य या अतिकुपोषण का शिकार है। आज का बच्चा कल देश का भविष्य होता है। अतः स्वस्थ्य नागरिक पैदा करना देश तथा समाज के प्रति हम सभी का मूल कर्तव्य बनता है।

प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है कि उसका पोषण उचित एवं सन्तुलित हो। परन्तु अधिकतर ऐसा नहीं हो पाता, किसी न किसी रूप में आहार में कुछ पौष्टिक तत्त्वों की कमी रह जाती है, जिसका प्रभाव शरीर पर पड़ता है।[3] जब व्यक्ति को उसकी शारीरिक आवश्यकता के अनुकूल उपयुक्त मात्रा में सभी भोज्य तत्त्व नहीं मिलते या आवश्यकता से अधिक मिलते हैं, जिनके कारण शरीर की वृद्धि एवं विकास तथा उसकी क्रियाशीलता पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है तो यह कुपोषण कहलाता है। कभी–कभी ऐसा भी होता है कि गुण और मात्रा की वृद्धि से भी भोज्य तत्त्व शारीरिक आवश्यकता के अनुसार लिए जाते हैं, परन्तु वास्तव में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जो पर्याप्त एवं उपर्युक्त भोज्य पदार्थों से युक्त आहार का उपयोग करने पर भी उसकी पौष्टिकता के लाभ से उपभोक्ता को वंचित रखती है।[4] अर्थात् भोज्य पदार्थ जब गुण एवं परिणाम में अपर्याप्त लिये जाते हैं जिससे भोजन द्वारा शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती तो वह कुपोषण की स्थिति कहलाती है।[5]

इस प्रकार कुपोषण वह स्थिति होती है जब व्यक्ति द्वारा ग्रहण किये जाने वाले आहार भूख तो शान्त करता है परन्तु उस आहार से मिलने वाले पौष्टिक तत्त्व शरीर की आवश्यकता के अनुरूप नहीं होते जिससे जीवन सत्त्व तथा खनिज

लवणों की कमी के कारण शरीर निर्माण कार्य तथा रोग–रोधन क्षमता में कमी आ जाती है। कुपोषण में भोजन के समस्त पौष्टिक तत्त्वों में से कुछ पौष्टिक तत्त्वों की मात्रा आवश्यकता से अधिक तो कुछ शरीर की आवश्यकता से कम होती है। पौष्टिक तत्त्वों की अधिकता या कमी दोनों हमारे शरीर के लिए हानिकारक है।

भोजन में पौष्टिक तत्त्वों की मात्रा सही होने पर भी कई बार कुपोषण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। कारण कि भोजन द्वारा पौष्टिक तत्त्व सही मात्रा में व्यक्ति के शरीर के अन्दर तो पहुँच जाता है परन्तु शरीर में उसका अभिशोषण, चयपचय तथा संग्रह की प्रक्रिया ठीक न होने के कारण पौष्टिक तत्त्वों का उपयोग सही नहीं हो पाता है और वह निरुपयोगी पदार्थों के साथ शरीर से बाहर निकल जाता है। इसके अतिरिक्त भी कुछ और कारण है जिससे भोजन में पौष्टिक तत्त्व होने पर भी शरीर में उसकी कमी रहती है। जैसे–भोज्य पदार्थों की अशुद्धियाँ एवं मिलावट होने के कारण शारीरिक थकावट व कमजोरी के कारण, समय पर व्यायाम न करने के कारण, नींद पूरा न हो पाने के कारण प्रकृति प्रदत्त स्वच्छ वायु एवं प्रकाश न मिलने के कारण भी कुपोषण का जन्म होता है।

कुपोषण के प्रकोप का अध्ययन दिल्ली के एजूकेशनल प्लानिंग ग्रुप ने किया तथा यह पाया कि कुपोषण व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक एवं भावनात्मक संतुलन के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है तथा एक कुपोषित व्यक्ति की लम्बाई एवं भार, वजन सामान्य व्यक्ति की तुलना में कम होता है। ऐसे व्यक्तियों में संक्रामक रोगों के प्रति रोग प्रतिरोधक क्षमता अत्यन्त कम तथा ग्रसित होने की संभावना अधिक होती है। इसके अलावा उन्होंने यह भी पाया कि कुपोषण का प्रभाव सीखने की क्षमता, स्मरण शक्ति, बुद्धि एवं वाक शक्ति तथा संवेगात्मक संतुलन पर भी पड़ता है। व्यक्ति को जब उचित मात्रा में उचित प्रकार का आहार नहीं मिलता है तो कई आवश्यक पोषक तत्त्व, उचित मात्रा में शरीर को नहीं मिल पाते है और कई अभावजनित रोग व विषमताएँ पैदा हो जाती है। सामान्यतः प्रोटीन

एनर्जी मालन्यूट्रीशन, विटामिन ए, बी, आयरन एवं अन्य विटोमिनों के अभाव में कई रोग हो जाते हैं। प्रोटीन एनर्जी मालन्यूट्रीशन के अन्तर्गत क्वाशियोरकर रोग हो जाता है। इस रोग में शरीर वृद्धि अवरूद्ध हो जाती है, पैर व टांगों में सूजन आ जाती है, पेशियों का क्षय हो जाता है। बाल एवं त्वचा का रंग बदल जाता है, त्वचा झुर्रीदार हो जाती है। इसके अतिरिक्त जब प्रोटीन और ऊर्जा दोनों का ही शरीर में अभाव हो जाता है तो मरासमस रोग हो जाता है। इसमें भी शारीरिक वृद्धि रूक जाती है तथा मांसपेशियों का पूर्ण क्षय हो जाता है। विटामिन ए डिफीशियन्सी में नेत्र दृष्टि प्रभावित होती है। आयरन की कमी से एनीमिया हो जाता है। इससे विशेषकर महिलाएँ ही प्रभावित होती हैं। विटामिन बी के अभाव में जिह्वा और होठों पर घाव बन जाते हैं, यह सब कुपोषण के कारण होता है। राइबोफ्लेविन के अभाव में त्वचा में दरारें पड़ जाती हैं। नायासिन के अभाव में पेलेग्रा रोग हो जाता है। यह ज्वार खाने वाले व्यक्ति में ज्यादा होता है। आयोडीन के अभाव में घेघा रोग हो जाता है। इसी तरह पोषक तत्त्वों के अभाव में व्यक्ति कुपोषण का शिकार हो जाता है और तद्जनित विषमताओं से ग्रसित हो जाता है। प्रायः यह देखा गया है कि दूसरे देशों की अपेक्षा भारत की जनसंख्या बहुत अधिक कुपोषित है तथा अपोषित भी है। इसी से यहाँ मृत्यु–दर अधिक है, यहाँ के अधिकांश लोग किसी न किसी रोग से पीड़ित हैं फलतः उनकी कार्यक्षमता भी कम होती है तथा स्वस्थ प्रसन्नचित्त, लम्बी–चौड़ी स्वस्थ कद–काठी वाले स्फूर्तिवान विरले ही दिखाई देते हैं।

इस प्रकार कुपोषण का प्रभाव शारीरिक विकास पर ही नहीं अपितु मानसिक विकास, बौद्धिक क्षमता, सीखने की शक्ति, स्मृति आदि पर भी पड़ता है।[6] पोषण सम्बन्धी सर्वेक्षणों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कुपोषण के प्रकोप के कारण गर्भवती स्त्रियों, शिशुओं, बच्चों तथा परिचर्या करने वाली माताओं में पोषण सम्बन्धी न्यूनतमजन्य रोग अधिक पाये जाते हैं। इनमें से कुछ में कुपोषण के लक्षण

प्रकट नहीं होते। परन्तु उनमें उत्तम स्वास्थ्य की विशेषताएँ नहीं पायी जाती और आसानी से रोगों के पकड़ में आ जाते हैं। इसलिए हमारे देश में अधिकांश जनसंख्या का स्वास्थ्य कुपोषण के कारण अच्छा नहीं रहता।

कुपोषण की स्थिति अनेक परिस्थितियों में उत्पन्न होती है, इसका कोई एक कारण नहीं होता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने शरीर में रक्त की कमी, पौष्टिक मात्रा की कमी, पौष्टिक तत्त्वों को ग्रहण करने में असमर्थता और रक्त निर्माणक तत्त्वों को ग्रहण नहीं कर पाने को कुपोषण का कारण पाया है। इसके अतिरिक्त भी कुपोषण के निम्नलिखित कारण हैं–

क. खाद्य पदार्थ का अभाव

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसके बावजूद यहाँ खाद्य प्रदार्थों का निरन्तर अभाव–सा बना रहता है। यहाँ की सरकार को अन्य देशों से अनाज, कर्ज या अनुदान के रूप में लेना पड़ता है ताकि खाद्यान्न की पूर्ति की जा सके। इसके बावजूद जो भोजन मिलता है वह पौष्टिक तत्त्वों से रहित रहता है जबकि भोजन पोषण का माध्यम होता है। यदि शरीर की आवश्यकता से कम भोजन ग्रहण किया जाता है, तो उससे प्राप्त होने वाले पोषक तत्त्व की न्यूनता होती है जिसके परिणामस्वरूप कुपोषण की स्थिति उत्पन्न होती है।

ख. निर्धनता

भारत में जनसंख्या का अधिकांश भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन करता है तथा गरीबी के कारण उनकी क्रय क्षमता भी कम होती है, जो कुपोषण का एक मुख्य कारण है। निम्न आय वर्ग के लोग भोजन तो करते हैं किन्तु सिर्फ पेट भरने के लिए। इनके भोजन में आवश्यक मात्रा में पौष्टिक तत्त्व नहीं प्राप्त हो पाते हैं। क्योंकि बढ़ती हुई महंगाई, कम आमदनी तथा निर्धनता के कारण वे उच्च पौष्टिक मूल्यों वाले भोज्य पदार्थों को खरीदने में असमर्थ होते हैं तथा उनके भोजन

में प्रायः पौष्टिक तत्त्वों की कमी के कारण धीरे–धीरे वो कुपोषण के शिकार हो जाते हैं।

ग. अशिक्षा और पोषण के प्रति अज्ञानता

भारत एवं अन्य अविकसित एवं विकासशील देशों में कुपोषण का प्रमुख कारण अशिक्षा एवं पोषण के ज्ञान का अभाव है। अधिकांश जनता भोज्य पदार्थ उपलब्ध होते हुए भी अज्ञानतावश कुपोषण का शिकार हो जाती है। क्योंकि आम व्यक्ति की यह धारणा होती है कि पौष्टिक आहार मंहगे साधनों द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं जबकि ऐसे भी कुछ भोज्य पदार्थ हैं जो पौष्टिकता से पूर्ण और सस्ते भी हैं। आम व्यक्ति पोषण के ज्ञान की कमी के कारण भोजन बनाने के सही तरीकों से भी अनभिज्ञ होते हैं। **उदाहरणार्थ**–चावल पकाते समय उसका पानी फेंक देना, सब्जियों के मोटे छिलके उतारना, यह भोजन बनाने के गलत तरीके हैं जो भोजन की पौष्टिकता को कम कर देते हैं।

घ. संक्रमण तथा रोग व्याधियाँ

रोग तथा रोगों के संक्रमण के कारण भी कुपोषण की स्थिति उत्पन्न होती है। संक्रमण के कारण शरीर की जो स्थिति बन जाती है उस पर कुपोषण का सहज बीजारोपण हो जाता है। डायरिया, मीजल्स आदि के बाद भूख खत्म हो जाती है, और पोषक तत्त्व शरीर में शोषित नहीं हो पाते हैं और शरीर कमजोर होकर कुपोषण की स्थिति में चला जाता है।

ड. भोज्य पदार्थ में मिलावट

वर्तमान परिवेश में धन कमाने का एक भ्रष्ट तरीका भोज्य पदार्थों में मिलावट भी है। जैसे काली मिर्च में पपीते का बीज, हल्दी में गेरू, गेहूँ, चावल, दाल का वजन बढ़ाने के लिए उसमें उनके रंग के मिलते–जुलते कंकड़–पत्थर मिलाना। ये मिलावटी पदार्थ जहाँ भोजन की पौष्टिकता को प्रभावित करता है, वहीं मिलावटयुक्त

भोज्य पदार्थ से शरीर की क्रियाएँ भी अनियमित हो जाती हैं।

च. भोजन सम्बन्धी गलत आदत

हमारी भोजन सम्बन्धी गलत आदतें हमारे शिक्षा और ज्ञान को पीछे छोड़ देती हैं। पौष्टिक तत्त्वों से युक्त कम मसाले वाला उबला–सा भोजन देखकर न केवल घर के प्रौढ़ और वृद्ध बल्कि युवा वर्ग विशेषकर किशोरियाँ भी नाक–भौं सिकोड़ने लगती हैं क्योंकि उन्हें तली–भूनी और मसाले युक्त भोजन पसंद होते हैं और उसे वह धीरे–धीरे अपने प्रतिदिन के आहार का हिस्सा बना लेते हैं। यह जानते हुए भी कि अधिक मिर्च मसाले, तला हुआ चिकनाई युक्त भोजन हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। हम अपने स्वाद व आदत के कारण उन्हें नहीं छोड़ पाते हैं। खाने का गलत समय, दो भोजन के बीच का असमान अन्तराल भी व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, वह धीरे–धीरे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं।

छ. आहार के प्रति जागरूकता में कमी

यहाँ के लोगों में आहार के प्रति जागरूकता नहीं है। उन्हें केवल अपना पेट भरने से मतलब होता है, उन्हें यह चिन्ता नहीं होती कि वह क्या खा रहे है जबकि विदेशों में लोग अपने आवश्यकता अनुरूप आहार ग्रहण करते हैं, ताकि उनके द्वारा लिये गये आहार से उन्हें उचित मात्रा में पोषक तत्त्व मिल सके और वे हमेशा स्वस्थ व तंदुरूस्त रहें क्योंकि पोषक तत्त्व के अभाव में व्यक्ति कुपोषण का शिकार हो जाता है।

ज. सामाजिक और सांस्कृतिक रीति–रिवाज

अधिकतर भारतीय अपने देश व परिवेश की परम्पराओं से ऊपर उठना नहीं चाहते हैं। यहाँ सदियों से यह प्रथा चलती आ रही है कि श्रेष्ठ खाना सबसे पहले पुरुष वर्ग को दिया जायेगा, उसके बाद लड़कों को और जो बचा–खुचा होता है, वह लड़कियाँ और घर की अन्य महिलाएँ ग्रहण करती है। भारत की सम्पूर्ण

आबादी का आधे से भी अधिक जनता गाँवों में निवास करती है। ग्रामीण अधिकतर रूढ़िवादी और अंधविश्वासी होते हैं। वे पाप और पुण्य को अधिक महत्त्व देते हैं। उनके गलत धार्मिक एवं सामाजिक स्तर(Religion and false social status) आदि विचारधाराएँ कई पोषक तत्त्वों से वंचित रखती हैं। शाकाहारी, सामिष भोजन के लाभों से पूर्णतः वंचित रह जाती हैं। वे अण्डा व मांस, मछली का सेवन भी नहीं करते हैं क्योंकि इसे वे धर्म के विरूद्ध मानते हैं। परिवार के महत्वपूर्ण और अपेक्षाकृत अपेक्षित सदस्यों में भोजन का विभाजन भी उपेक्षितों में कुपोषण का कारण बन जाता है।

झ. अत्यधिक कार्य

प्रायः यह देखा गया है कि एक आम भारतीय अत्यधिक श्रम करता है। वस्तुतः उसके काम के अनुरूप उसकी जरूरत के लिए उसे पूर्ण पौष्टिक तत्त्व नहीं मिलते हैं और जो भोजन वह ग्रहण करता है वह उसकी जरूरत के लिए पर्याप्त नहीं होता है। निरन्तर ऐसी व्यवस्था से उसकी कार्यक्षमता गिरती जाती है तथा कमजोरी बढ़ती जाती है और धीरे–धीरे वह कुपोषण का शिकार हो जाता है।

ञ. शहरीकरण

इस समय शहरीकरण भी कुपोषण का एक मुख्य कारण माना जा रहा है क्योंकि बढ़ती जनसंख्या के साथ जमीन तो बढ़ी नहीं फलस्वरूप रोजगारों की खोज में लोग गाँव से शहरों की तरफ भाग रहे हैं, जबकि उन्हें वहाँ राहत के स्थान पर तमाम तकलीफों का सामना करना पड़ता है। रहने को मकान नहीं, खाने को अच्छा खाना नहीं, शुद्ध पानी नहीं, गन्दगी से भरा वातावरण तथा भीड़–भाड़, इन सबके कारण उनका स्वास्थ्य गिरता जाता है और वे कुपोषण के शिकार होते जाते हैं।

इसके अतिरिक्त डॉ0 लक्ष्मीकान्त ने भी भारत में कुपोषण के कई कारण

बताये हैं–

1. आबादी में वृद्धि
2. वैज्ञानिक ढंग की खेती का अभाव
3. संक्रामक और पैरासाइटिक रोगों का बाहुल्य
4. धर्म और संस्कृति से उत्पन्न आहार सम्बन्धी भ्रान्तियाँ
5. अशिक्षा और अज्ञानता आदि इन परिस्थितयों के कारण भी कुपोषण उत्पन्न होता है।

अतः उपरोक्त कारणों पर हम ध्यान दें तो हम पाएँगे कि जब तक अज्ञानता का अन्धकार नहीं हटेगा तब तक कुछ नहीं होगा। न ही आबादी का बढ़ना रूकेगा, न खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढ़ेगा, न आदतें सुधरेंगी और न ही व्यक्ति का स्वास्थ्य सुधरेगा। इस दिशा में जनमानस को बदलना होगा, उनमें जनजागृति लानी होगी और इस कार्य में जनसहयोग जरूरी है क्योंकि इसके बिना कुपोषण का निवारण संभव नहीं है।

(2) पोषण न्यूनता से रोगों में वृद्धि

महानता की दृष्टि से भारत का विश्व में सातवाँ स्थान है तथा जनसंख्या की दृष्टि से दूसरा स्थान है।[7] यहाँ निरक्षरता, अज्ञानता, कृषि उत्पादन के अभाव आदि से केवल विश्व के 2.4 प्रतिशत स्थान(जिससे भारत बना है) में विश्व की जनसंख्या का 14.6 प्रतिशत भाग पाया जाता है। सन् 1971 में भारत की जनसंख्या 547 मिलियन थी, जबकि भारत का कुल क्षेत्रफल केवल 806 मिलियन एकड़ है, जिसमें से केवल 422 मिलियन एकड़ भूमि ही कृषि कार्य के लिए उपयोगी है तथा शेष भूमि पर जंगल, पहाड़, मरूस्थल, तालाब आदि पाये जाते हैं।[8]

हाल ही में किये गये एक आहार सर्वेक्षण के आधार पर भारत के अधिकांश लोगों का भोजन संगठन निम्न स्तर का है, जैसे अनाज की मात्रा

अत्यधिक है तथा दाल, सब्जियाँ आदि अत्यन्त कम मात्रा में होती हैं। दूध, अण्डा, मांस, मछली आदि की मात्रा नगण्य होती है। कुछ लोगों को तो कुछ भी खाने को नहीं मिल पाता है। आहार सर्वेक्षण के आधार पर पोषण न्यूनताजनित रोगों के लक्षण सर्वत्र फैले हुए है। शिशुओं व छोटे बच्चों में प्रोटीन, कैलोरी कुपोषण, विटामिन तथा रिबोफ्लेबिन की कमी से होने वाला रोग अत्यधिक देखने को मिलते हैं।[9] गर्भवती तथा दूध पिलाती माताओं में लोहा व फोलिक अम्ल की कमी से रक्त अल्पता नामक रोग अधिक पाया जाता है।

भारत के आहार उत्पादन की दर को देखने से ज्ञात होता है कि पशुजन्य प्रोटीन युक्त पदार्थों का अत्यन्त अभाव पाया जाता है तथा कुल कैलोरी की मात्रा भी अपर्याप्त है। वर्तमान जनसंख्या की पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपलब्ध आहार की मात्रा अत्यन्त कम है, विशेषकर निम्न आर्थिक वर्गों पर इसका अत्यधिक कुप्रभाव पड़ सकता है।[10] अपर्याप्त पोषण में भोज्य पदार्थ की मात्रा एवं गुण की दृष्टि से वह शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता क्योंकि उसमें पोषण तत्वों की न्यूनता दृष्टिगोचर होती है। पोषण न्यूनता के परिणाम स्वरूप शरीर का अपेक्षित विकास एवं वृद्धि नहीं हो पाती तथा पोषण न्यूनता के कारण हीनताजनित रोग उत्पन्न हो जाता है। जिसका वर्णन इस प्रकार है–

अ. क्वाशियोरकर (Kwashiorkor)

भारत वर्ष में प्रतिवर्ष लगभग दस लाख बच्चों की मृत्यु प्रोटीन कैलोरी कुपोषण की अत्यधिक तीक्ष्णता से होती है। निर्धन बच्चों में प्रोटीन द्वारा प्राप्त कैलोरी के अभाव में कुपोषण ही मुख्यतः शिशु मृत्यु एवं विकार के लिए उत्तरदायी होता है। हाल ही में कुछ इस तरह के प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि शिशु की प्रारम्भिक अवस्था में कुपोषण उसके भावी विकास पर स्थायी एवं गम्भीर प्रभाव डालता है। यह प्रभाव केवल व्यक्ति के शारीरिक विकास तक ही सीमित नहीं होता वरन् उसके मानसिक, सामाजिक, नैतिक विकास तथा सीखने की क्षमता को भी प्रभावित करता है।

प्रोटीन के अभाव के कारण बच्चों की शारीरिक विकास की गति अवरूद्ध हो जाती है। जिन बच्चों को दूध छुड़ाने के पश्चात चावल का मांड दिया जाता है तथा भोजन में दूध दाल, सब्जी आदि की अनुपस्थिति होती है, उन बच्चों में क्वाशियोरकर रोग हो जाता है और निम्नलिखित लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। तन्तुओं में पानी भरने के कारण शरीर में सूजन आ जाती है और इसके कारण मांसपेशीय क्रियाओं में बाधा उत्पन्न होती है। शरीर में दर्द रहता है। बच्चों के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। भार(वजन) में कमी आ जाती है। त्वचा के रंग में परिवर्तन आने लगते हैं। जलन की अनुभूति होती है तथा बाल सफेद हो जाते हैं और झड़ने लगते हैं। यकृत बढ़ जाता है। क्वाशियोरकर में पाचन संस्थान में असंतुलन हो जाता है जिससे भोजन का पाचन, शोषण तथा उपापचयन सही ढंग से नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त वयस्कों में प्रोटीन की कमी के कारण निम्न लक्षण दिखाई देते हैं जैसे किशोरियों एवं वयस्कों के भार में कमी आ जाती है। रक्तहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। रोग निरोधक क्षमता का ह्रास होने लगता है। पैर, श्रोणी–गुहा वाले भाग में सूजन व जलोदर की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्रोटीन की कमी के कारण हड्डियों की टूट जल्दी होती है, क्योंकि प्रोटीन हड्डियों के मध्य पायी जाने वाली अस्थि मज्जा को निर्मित कर उन्हें मजबूती प्रदान करता है।

ब. मरास्मस (Marasmus)

कैलोरी तथा प्रोटीन के अभाव में मरास्मस हो जाता है। निर्जलीकरण तथा वजन में कमी हो जाती है। वृद्धि रूक जाती है। दस्त अधिक होते हैं। मनुष्य केवल अस्थि व चर्म का ढाँचा मात्र रह जाता है। त्वचा बूढ़ों के समान झुर्रीदार हो जाती है।

स. अस्थि–विकृति(Bone Deformite)

निम्न आर्थिक स्तर के बच्चों में अस्थियों का विकास, प्रोटीन, कैल्शियम, फास्फोरस तथा विटामिन डी की कमी के कारण अत्यन्त धीमी गति से होता है जिसके कारण बच्चे डेढ़–दो साल तक चल नहीं पाते हैं। सबसे पहले शिशुओं में तथा अस्थिगर्भ (Matrix) का निर्माण होता है, जिस पर खनिज लवण जमते हैं, तथा हड्डी दृढ़ बनती जाती है। अस्थि गर्भ के निर्माण के लिए प्रायः विटामिन 'ए' व 'सी' तथा प्रोटीन की आवश्यकता होती है। अस्थियों की मजबूती के लिए कैल्शियम में फास्फोरस तथा विटामिन 'डी' अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इसकी कमी होने पर बच्चों में रिकेट्स व किशोर तथा वयस्कों में आस्टोमलेशिया नामक रोग हो जाता है।

1. रिकेट्स (Rickets)

विटामिन 'डी' की कमी व कैल्शियम व फास्फोरस के अनुपात में असन्तुलन के कारण रिकेट्स हो जाता है। इसमें छाती छोटी हो जाती है, पसलियों में मोती जैसा(Rackitic Rosary) आकार बन जाता है। जोड़ों में दर्द व सूजन रहता है। पैरों का आकार बिगड़ जाता है, मांसपेशियाँ ढीली हो जाती हैं। दाँत देर से उगते हैं। बच्चा श्वांस संबंधित बीमारियों से शीघ्र ग्रस्त हो जाता है।

2. ऑस्टोमलेशिया (Ocsteomalacia)

वयस्कों में कैल्शियम की कमी के कारण यह रोग हो जाता है। विशेषकर स्त्रियों की गर्भावस्था के समय यह स्थिति अधिक तीव्र हो जाती है। पंजाब, कश्मीर एवं मध्यपूर्वी भागों में यह बीमारी अधिक देखने को मिलती है। क्योंकि वहाँ पर्दा प्रथा के कारण सूर्य की रोशनी इन्हें नहीं मिल पाती है। पीठ में पीड़ा रहती है, विशेषकर निचले भाग में, कूल्हे की हड्डियों तथा पैरों में अत्यन्त दर्द रहता है। जोड़ों में सूजन, चलने में कठिनाई, मांसपेशियों का कष्टदायक संकुचन, अस्थियों का

जरा से धक्के के कारण टूट जाना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

द. आस्टोपोरोसिस (Ocsteoporosis)

वयस्कों में अस्थि विकास के पूर्ण होने के पश्चात् भी पुरानी हड्डियों का घिसना तथा नयी अस्थियों का निर्माण निरन्तर चलता रहता है। सामान्य व्यक्तियों में यह क्रिया सन्तुलित होती है। किन्तु जैसे–जैसे उम्र बढ़ती जाती है पुरानी हड्डियों का घिसना तीव्र गति से होने लगता है। लेकिन अस्थियों का निर्माण उसके अनुरूप नहीं हो पाता जिससे हड्डियाँ कम गाढ़ी तथा नाजुक बन जाती है। इसी स्थिति को आस्टोपोरोसिस कहते हैं। यह रोग अधिकतर स्त्रियों में अधिक पाया जाता है और जैसे–जैसे उम्र बढ़ती जाती है। इस रोग के होने की संभावनाएँ भी बढ़ती जाती हैं। रजोधर्म बन्द होने के समय यह हार्मोन्स के असन्तुलन के कारण भी हो जाता है।

य. मोटापा (Obesity)

10 से 20 प्रतिशत किशोर–किशोरियाँ मोटापे की शिकार देखने को मिलती है।[11] मानव की भूख का नियन्त्रित केन्द्रीय नाड़ी संस्थान द्वारा स्वाभाविक रूप से होता है। परन्तु व्यक्ति जब आवश्यकता से अधिक स्टार्चयुक्त पदार्थों का सेवन करता है तब वे वसा में परिवर्तित होकर वसीय तन्तुओं में संग्रहीत हो जाते हैं। इससे शरीर मोटा हो जाता है तथा स्थूलता या मोटापा रोग घेर लेता है। मोटापे के कारण अनेक प्रकार की मनोवैज्ञानिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे वह अपने शरीर के प्रति सजग हो जाता है। अस्थि संस्थान पर अधिक बोझ पड़ता है। मधुमेह, हृदय रोग होने की सम्भावना बढ़ जाती है। 30 वर्ष की आयु के बाद व्यक्ति मोटा होने लगता है, क्योंकि आहारी उपापचयन की दर तथा शारीरिक क्रियाशीलता 30 वर्ष के बाद कम होने लगती है।[12]

र. विटामिन ए की कमी से उत्पन्न रोग

भारत की अधिकांश जनता के आहार में कैरोटीन तथा विटामिन ए की

कमी पायी जाती है जिसके परिणामस्वरूप उनमें रतौंधी, चमकहीन शुष्क आँखें, जेरोफ्थालमिया आदि रोग हो जाते हैं। एपीथिलियम तन्तुओं पर भूरे रंग के कैरोटीन नामक पदार्थ के जमने से आँखों का सफेद भाग मोटा होने लगता है। इससे कर्निया भी प्रभावित होता है तथा मृदु बनने लगता है इस स्थिति को केरटोमलेशिया कहते हैं। इससे व्यक्ति पूर्णतया अन्धा हो जाता है।

ल. स्कर्वी (Scurvy)

यह रोग विटामिन–सी की कमी से होता है। इसमें मसूड़े फूल जाते हैं, उनसे रक्त बहने लगता है, दाँत ढीले हो जाते हैं तथा गिरने लगते हैं। त्वचा पर धब्बे पड़ जाते हैं। कोलेजन नामक संयोजक तन्तुओं का निर्माण नहीं हो पाता है। इस स्थिति में रक्त अल्पता भी पाई जाती है क्योंकि लोहे के शोषण के लिए विटामिन–सी की आवश्यकता होती है।

व. रिबोफ्लेविन की कमी से उत्पन्न रोग (Riboflavin)

इस रोग में होठों, आँख तथा जबान में जलन होती है, ओठों पर छाले पड़ जाते हैं तथा मुंह के दोनों कोने फट जाते हैं। यह सब व्यक्ति के आहार में राइबोफ्लेविन की कमी से हो जाता है।

श. बेरी–बेरी (Beri-Beri)

दैनिक भोजन में थाइमिन की कमी के कारण बेरी–बेरी नामक रोग हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है। (वैट) गीली बेरी तथा (ड्राई) सूखी बेरी–बेरी। इन दोनों स्थितियों में भूख कम लगती है। उल्टी, कब्ज, मानसिक, जलन तथा अन्त में पेरोलिसिस हो जाता है। हृदय की मांसपेशियों पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

ष. पेलेग्रा (Pellegra)

यह रोग मुख्यतः नायसिन की कमी से होता है। इसमें मुँह में छाले पड़ जाते हैं। जबान लाल हो जाती है, बार–बार पतले दस्त होते हैं। त्वचा पर धूप के

पड़ने से लाल धब्बे पड़कर सूजन आ जाती है और घाव–सा हो जाता है। नाड़ी संस्थान व पाचन संस्थान भी इससे प्रभावित होता है। मानसिक क्रियाशीलता में कमी आ जाती है तथा अत्यधिक कुप्रभाव की स्थिति में रक्तहीनता भी हो जाती है।

ह. एनीमिया (Anaemia)

विटामिन बी12, फोलिक अम्ल तथा आयरन की कमी से यह रोग होता है। इस रोग में रक्त में हीमोग्लोबीन की कमी सें शरीर की त्वचा, नाखून व नेत्रों की कोमल त्वचा आदि का रंग पीलापन लिए रहता है। त्वचा फीकी पड़ जाती है। भूख में कमी आ जाती है। थकान अधिक महसूस होती है, सिर में दर्द बना रहता है।

क्ष. गोयटर (Goiter)

आहार में खाद्यों तथा जल के द्वारा यदि आयोडीन की आवश्यकता पूर्ति नहीं होती तो थाइराइड ग्रन्थि बढ़ जाती है। जिसे ग्वायटर या घेंघा रोग कहते हैं इसमें भूख कम हो जाती है, व्यक्ति की क्रियाशीलता कम हो जाती है, मानसिक विकास ठीक से नहीं होता है शारीरिक वृद्धि भी कम होती है। आयोडीन नमक या पोटैशियम आयोडेट लेने से ठीक हो सकती है।

त्र. चर्मरोग (Dermatitis)

निम्न आर्थिक वर्गों के बच्चों में सूखी, खुरदरी त्वचा का होना एक साधारण बात है। क्योंकि कुपोषण के कारण त्वचा लचीली नहीं रह पाती। विटामिन ए, आवश्यक वसा–अम्ल तथा बी ग्रुप के विटामिन, विशेषकर रिबोफ्लोविन की कमी से तथा साथ ही साथ संक्रामक रोग के कारण भी चर्मरोग उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त आवश्यक वसा अल्म की कमी से एक्जीमा होने लगता है। इस प्रकार उपरोक्त सभी रोग पोषण न्यूनता के कारण उत्पन्न होते हैं क्योंकि आज भी जनता में पोषण संबंधी ज्ञान का अभाव है। किन्तु कुछ रोग पोषण की अधिकता के कारण भी होते हैं। पोषण न्यूनता एवं अधिकता दोनों ही कुपोषण के कारण होती है। अतः

कुपोषण की रोकथाम के लिए जनता में आहार सम्बन्धी ज्ञान व सजगता का होना अत्यन्त आवश्यक है। पोषण सम्बन्धी शिक्षा, पोषण कार्यक्रमों जैसे व्यावहारिक भोजन कार्यक्रम, मध्यकालीन भोजन कार्यक्रम, के द्वारा पौष्टिक पदार्थों को गर्भवती, शिशुओ एवं किशोर–किशोरियों आदि में वितरित करने से कुपोषण को कुछ हद तक रोका जा सकता है।

(3) उपचारात्मक पोषण की आवश्यकता

रोग की अवस्था में जब आहार द्वारा प्रमुख रूप से रोग का उपचार संभव लगता है अथवा रोग के उपचार में सहायता प्राप्त होती है तब आहार विज्ञान को उपचारात्मक आहार अथवा Diet Therapy तथा इस विज्ञान को उपचारात्मक पोषण कहते हैं।[13]

साधारण भोजन को रोगावस्था के अनुसार सुधार कर शीघ्र रोग विमुक्ति के लिए भोजन को एक कारण के रूप में प्रयोग में लाने के कार्य को ही डाइट थेरापी या भोजन द्वारा उपचार कहते हैं।[14]

भोजन द्वारा उपचार का उद्देश्य अस्वस्थ व्यक्तियों के पोषक स्तर को बनाये रखने के लिए उनके अनुसार भोजन को प्रयोग में लाना ही उपचारार्थ पोषण है।[15]

उपचारात्मक पोषण का संबंध सभी प्रकार के रोगियों से होता है, वह जो सामान्य आहार लेते हैं तथा वह जो सुधारा हुआ आहार लेते हैं। रोगी को आहार द्वारा उचित पोषक तत्त्व निश्चित अनुपात में मिलना आवश्यक होता है, जिससे उसकी शारीरिक क्रियाएँ सामान्य रूप से चलती रहें। यदि रोग की स्थिति में पोषक तत्त्व उचित मात्रा में नहीं मिलता है तो रोगी का स्वास्थ्य शीघ्र ठीक नहीं होता है तथा रोग की जटिलता में वृद्धि भी हो जाती है। उपचारात्मक पोषण का अर्थ रोगहर

होता है। इसमें रोग से छुटकारा पाने की कला सिखाई जाती है तथा रोग की अवस्था में उपचारार्थ आहार का ही प्रयोग किया जाता है। रोगी को बीमारियों में विशेष प्रकार के आहार की अवश्यकता होती है, क्योंकि रोग की स्थिति में कभी किसी पोषक तत्त्व की मांग में वृद्धि होने के कारण उसे अधिक मात्रा में शामिल करने की आवश्यकता होती है। रोग कुपोषण एवं कमजोरी यह एक चक्र के रूप में चलती है। यदि रोग की स्थिति में पोषण स्तर पर ध्यान दिया जाये तो रोग में होने वाली दुर्बलता एवं कमजोरी को रोका जा सकता है। अतः रोगी को उचित एवं संतुलित आहार देना आवश्यक है। रोगी को सामान्य स्थिति में लाने में उचित पोषण अर्थात् उपचारात्मक पोषण(आहार) सहायक होता है। यदि रोग की अवस्था में उचित पोषण नहीं मिलता है तो रोग ठीक होने में भी अधिक समय लगता है और अन्य बीमारियाँ भी हो जाती है।

मनुष्य जो आहार ग्रहण करता है उसमें शरीर निर्माणात्मक तत्व प्रोटीन, ऊर्जादायक तत्त्व–कार्बोहाइड्रेट एवं वसा तथा सुरक्षादायक तत्त्व विटामिन एवं खनिज लवण रहते हैं। स्वस्थ शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को अपने आहार से ये सभी तत्त्व निश्चित मात्रा में मिलते रहे। आहार में इनकी अधिकता और कमी विभिन्न रोगों को जन्म देती है। आहार चिकित्सा इस बात का भी निर्धारण करती है कि लिंग, आयु, व्यवसाय, शारीरिक डील–डौल एवं वजन के अनुसार आहार से कौन–सा तत्त्व कितनी मात्रा में मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त आहारीय अभावजनित किसी रोग से पीड़ित होने पर रोगी के आहार को किस प्रकार व्यवस्थित किया जाय जिससे वह शीघ्रातिशीघ्र स्वास्थ्य लाभ कर सके। इसका निर्धारण भी आहार चिकित्सा करता है। किस रोग में कौन–सा खाद्य पदार्थ ग्राह्य तथा कौन–सा वर्ज्य है आदि जैसी बातों की जानकारी भी हमें आहार चिकित्सा द्वारा ही प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त आहार चिकित्सा हमें विभिन्न खाद्य पदार्थों के पौष्टिकमान (Nutritional value) शरीर की विभिन्न अवस्थाओं में

उनके उपयोग की विधियों आदि के बारे में भी ज्ञान प्रदान करता है।[16]

प्रायः यह देखा गया है कि सामान्य व्यक्ति की तुलना में रोगग्रस्त व्यक्ति के चयापचय व पाचन क्षमता में अन्तर आ जाता है। पौष्टिक तत्वों के अवशोषण में भी परिवर्तन आ जाता है। बीमारियों की इन विशेष अवस्थाओं में कुछ पौष्टिक तत्व की शरीर में मांग बढ़ जाती है, तो कुछ की कम हो जाती है। कुछ बीमारियों पर पोषण में परिवर्तन कर 50 प्रशित तक काबू पाया जा सकता है। अन्य बीमारियों में यदि पोषण से बीमारी पर काबू नहीं पाया जा सकता तो बीमारी की अवस्था में होने वाली कमजोरी से बचाव किया जा सकता है। यह उपचारार्थ भोजन केवल बीमारी के समय ही सहायक नहीं होता अपितु बीमारी के बाद की अवस्था में भी कुछ समय तक शारीरिक कमजोरी दूर होने तक सहायक होता है। अलग–अलग बीमारियों में किस प्रकार का भोजन प्रयोग में लाना है। भोजन किस रूप में, कितनी मात्रा में देना है। यही उपचारार्थ पोषण होता है।[17]

उपचारार्थ पोषण की आवश्यकता रोगी का पोषण स्तर बनाये रखने में होती है। रोग की प्रकृति के अनुसार निम्नलिखित क्षेत्रों में परिवर्तन करके रोगी को आहार दिया जाना चाहिए–

1. रोगी की स्थिति के अनुसार पोषक तत्त्वों की मात्रा में परिवर्तन करके।
2. रोग को ध्यान में रखकर योजना का प्रकार निर्धारित करना कि भोजन तरल, कोमल, ठोस या अर्द्धतरल किस रूप में देना है।
3. रोगी की आवश्यकता के अनुसार भोजन पकाने की विधियों में परिवर्तन करना।
4. रोगी के भोजन की मात्रा एवं समय के अनुसार भोजन दिये जाने की आवृत्ति में परिवर्तन करना।
5. आहार आयोजन के दौरान रोगी की रुचि का भोज्य पदार्थ रखना तथा अरुचिपूर्ण आहार को हटाना।

6. रोगी का पोषण स्तर उत्तम रखने तथा किसी पोषक तत्त्व की कमी को दूर कर आहार आयोजन करना।

7. सन्तुलित उचित पोषण दवा के समान सहायक होता है। इसलिए शीघ्र स्वास्थ्य प्राप्ति हेतु आहार आयोजन करना।

8. किसी–किसी बीमारी में कभी–कभी पाचन संस्था के मुख्य या सहायक अंगों में से कुछ अंग प्रभावित होते है। ऐसी अवस्था में अहार आयोजन ऐसा करना चाहिए कि भोजन का शोषण, अवशोषण करने में प्रभावित अंगों को अधिक मेहनत न करनी पड़े और उन अंगों को अधिकाधिक आराम मिले।

9. रोगी के भोज्य पदार्थ में आवश्यकतानुसार रेशेयुक्त भोजन देना चाहिए। भोजन में कमी या वृद्धि करके कैलोरी में परिवर्तन करना चाहिए।

10. आहार आयोजन करते समय रोगी की आवश्यकता के अनुरूप आहार को अधिकाधिक विविधतापूर्ण बनाने का प्रयास करना चाहिए।

11. मोटापा भी एक प्रकार की बीमारी ही है जिसके कई कारण हो सकते हैं। कुछ कारण में अधिक खाना, वसा, कार्बोज आदि लेने से मोटापा बढ़ जाय तो भोजन में परिवर्तन करके बिना दवा के ही कैलोरी कम कर मोटापा दूर किया जा सकता है।

12. यदि पोषण न्यूनता के कारण दुबलापन ज्यादा है तो अन्य संक्रामक बीमारियों से बचाने के लिए भोजन में कैलोरी की मात्रा बढ़ाकर दुबलापन को दूर किया जा सकता है।

13. रोगी के आहार में किया गया परिवर्तन उसकी बीमारी की अवस्था, गम्भीरता, क्रियाशीलता, अंगों की स्थिति के अनुसार होनी चाहिए, क्योंकि कुछ रोगो में ज्यादा परिवर्तन की आवश्यकता होती है, तो कुछ रोगों में थोड़े परिवर्तन से भी काम चल जाता है।

14. रोगी की बीमारी लम्बे चलने की संभावना बढ़ने पर यह ध्यान रखना चाहिए कि रोगी के आहार को किसी एक समय में केवल अधिक से अधिक चार–पाँच दिन के लिए ही प्रयोग किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् उसमें समायोजन किया जाना आवश्यक होता है।

15. उपचारात्मक आहार सामान्य आहार से मिलता–जुलता होना चाहिए। उसमें अधिक भिन्नता नहीं होनी चाहिए क्योंकि अधिक भिन्नता से रोगी के आहार ग्रहण करने की क्षमता प्रभावित होती है।

16. उपचारात्मक आहार का आयोजन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि रोगी में आरम्भिक आहार के स्वरूप, उसकी रुचियाँ, आदतों, धार्मिक मान्यताओं, आर्थिक स्थिति तथा सभी वातावरण सम्बन्धी बातों को दृष्टिगत रखा गया है या नहीं।

इस प्रकार उपचारात्मक आहार की आवश्यकता के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि रोग की अवस्था से शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हेतु शरीर की कमजोरी दूर करने हेतु उपचारात्मक भोजन लिया जाता है। राबिंसन की एक प्रसिद्ध कहावत है–

The best doctor in the world are doctor diet, doctor quiet and doctor merriman अर्थात् दुनिया में सर्वोत्तम चिकित्सक है डाक्टर डायट(आहार), डाक्टर क्वायट(शांति) तथा डा0 मेरीमैन(खुशमिजाज)। आहार चिकित्सा की अधिक आवश्यकता इन्हीं डाक्टर डायट के संबंध में विस्तृत ज्ञान उपलब्ध करने–कराने के लिए होती है। रोग हो जाने पर उसका उपचार करने की अपेक्षा यह प्रयास करना उत्तम होगा कि रोग हो ही नहीं। कहा भी जाता है कि , " Prevention is better than cure" इस प्रयास में सफलता पाने के लिए आहार चिकित्सा की सहायता प्राप्त करना आवश्यक है। विभिन्न खाद्य पदार्थों के औषधीय अथवा निदानात्मक मूल्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी आहार चिकित्सा का अध्ययन करने की

आवश्यकता होती है।

आहार चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण अवयव है औषधीय पोषण। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में पोषण के भिन्न–भिन्न स्तरों की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार विभिन्न शारीरिक स्थितियों में भी भिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों की एवं पोषण की मात्रा की आवश्यकता होती है तथा इसकी पूर्ति हेतु उपचारात्मक आहार चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 प्रमिला वर्मा एवं कान्ति पाण्डेय, आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ0 84
2. सुधानारायण, आहार नियोजन, पृ0 245
3. डा0 कान्ति पाण्डेय, आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ0 5
4. डा0 जी0 पी0 शैरी–पोषण एवं विज्ञान, पृ0 8
5. बी0 डी0 हरपालानी, आहार विज्ञान एवं उपचारात्मक पोषण, पृ0 9
6. J.Cravito *et al.* :Nutrition Growth and Neuro Integrative Development, P. 319.
7. M. Swaminathan : Esstntials of Nutrition, Vol II, P. 335 (1974)
8. P.V. Suphatme,Feeding India's Growing Millions. P.5
9. R.Rajalaxmi: Applied Nutrition (1969) P. 426
10. सुधानारायण, आहार नियोजन, पृ0 277
11. B.Srilakahmi, Dietetics
12. R.Rajalaxmi: Applied Nutrition, P. 351
13. बी0 डी0 हरपालानी, आहार विज्ञान एवं उपचारात्मक पोषण, पृ0 14
14. Proudefit and Robinson, Normal & Therapeatic Nutrition, P.418.
15. Micnael G. Wohe: Modren Nutrition in Health and Disease, P.664.
16. Dr.Usha Verma- Food, Nutrition & Dietetics-P.187.
17. बी0 के0 बख्शी–आहार एवं पोषण विज्ञान, पृ0 339

◆◆◆